पटना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में
आपराधिक विविध संख्या 17078/2020

थाना कांड संख्या -2065 वर्ष-2008 थाना- भागलपुर शिकायत मामला जिला- भागलपुर से उत्पन्न

==========

दीपक कुमार उर्फ दीपक साह, पुत्र सुरेंद्र प्रसाद साह, निवासी लाहापट्टी, थाना-कोतवाली, जिला-भागलपुर।

... ... याचिकाकर्ता

बनाम

1. बिहार राज्य
2. प्रभाष चंद्र साह, पुत्र स्वर्गीय हरि प्रसाद साह, निवासी एन.सी.चटर्जी रोड, मुंदीचक, थाना-तिलकामांझी, जिला-भागलपुर।

... ... विपक्षी पक्ष

==========

उपस्थिति:

याचिकाकर्ता/ओं की ओर से	:	श्री प्रवीण कुमार, अधिवक्ता
राज्य की ओर से	:	श्री जय नारायण ठाकुर, अ.लो.अ.
ओ.पी. संख्या 2 के लिए	:	श्री अरविंद कुमार, अधिवक्ता
		श्रीमती प्रतिमा कुमारी, अधिवक्ता
		श्री एस अज़ीम, अधिवक्ता
		श्री अक्षय लाल पंडित, अधिवक्ता

==========

अधिनियम/धाराएँ/नियम:

- *भारतीय दंड संहिता की धाराएँ 323/379/34*

संदर्भित मामले:

- *प्रियंका श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 6 एससीसी 287 में रिपोर्ट किया गया*
- *गुलाम मुस्तफा बनाम कर्नाटक राज्य [2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 603];*
- *बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य [(2010 12 एससीसी 254]*
- *नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2021) 19 एससीसी 401]*

याचिका– वह आदेश रद्द करने के लिए याचिका दायर की गई थी, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता और अन्य के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 323/379/34 के तहत संज्ञान लिया गया था।

निर्णय–

- *शिकायतकर्ता ने स्वयं यह बयान दिया कि याचिकाकर्ता ने उसकी भूमि पर अतिक्रमण किया था, लेकिन इसके बावजूद उसने कोई दीवानी मुकदमा दायर नहीं किया।*
- *कथित घटना के जो तथ्य शिकायतकर्ता ने बताए हैं, वे अन्य जांच गवाहों द्वारा समर्थित नहीं प्रतीत होते।*
- *हमले के मुद्दे पर भी विरोधाभासी बयान हैं, क्योंकि शिकायतकर्ता ने कहा कि याचिकाकर्ता के आदेश पर अन्य व्यक्तियों द्वारा हमला किया गया, जबकि अन्य जांच गवाहों ने कहा कि याचिकाकर्ता ने स्वयं शिकायतकर्ता पर हमला किया था। (पैरा 21)*
- *चूंकि पहले से ही भूमि विवाद का मामला चल रहा था, इसलिए छिपे हुए स्वार्थ से इनकार नहीं किया जा सकता। (पैरा 22)*

याचिका स्वीकृत की जाती है। (पैरा 23)

==========

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

==========

समक्ष: माननीय न्यायमूर्ति श्री चंद्र शेखर झा

मौखिक निर्णय

दिनांक: 04-03-2025

याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान अ.लो.अ. को सुना गया।

2. वर्तमान आवेदन, भागलपुर के विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी - प्रथम श्रेणी द्वारा कोतवाली शिकायत वाद संख्या 2065(सी)/2008 के संबंध में पारित दिनांक 22.06.2009 के संज्ञान आदेश को निरस्त करने के लिए प्रस्तुत किया गया है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता एवं अन्य के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता (संक्षेप में 'आई.पी.सी.') की धारा 323/379/34 के अंतर्गत अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया है।

3. विपक्षी पक्ष संख्या 2/ शिकायतकर्ता प्रभाष चंद्र साह को नोटिस जारी किया गया, जिसकी विधिवत तामील की गई तथा उनकी पसंद के अधिवक्ता के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष उनका प्रतिनिधित्व किया गया।

4. शिकायतकर्ता के मामले में जैसा कि उसकी शिकायत के विवरण से पता चलता है कि वह कई वर्षों से भागलपुर के सुजागंज के गिरधारी साह लेन में स्थित अपनी दुकान में फल और नारियल का व्यवसाय कर रहा था, जिसे उसने अपने तीन भाइयों के साथ मिलकर वर्ष 1999 में हीरेन्द्र प्रसाद साह और महेन्द्र प्रसाद साह से पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से खरीदा था। शिकायत के विवरण से यह भी पता चलता है कि याचिकाकर्ता इलाके का एक प्रभावशाली और धनी व्यक्ति होने के नाते और गिरधारी साह हटिया का मालिक होने के नाते उसकी दुकान हड़पने की नीयत से पहले ओ.पी. संख्या 2 को दुकान बेचने की पेशकश की, लेकिन जब उसने ऐसा करने से इनकार कर दिया, तो याचिकाकर्ता अपने सहयोगियों के साथ मिलकर उसे परेशान

करने लगा और इसके आगे बढ़कर उसकी दुकान को ध्वस्त करने के लिए उसके बगल में एक गड्ढा खोदना शुरू कर दिया। आगे यह भी आरोप लगाया गया कि जब 10 फीट गहराई तक गड्ढा खोदा गया तो दुकान भवन ध्वस्त होने की आशंका होने पर उन्होंने एस.एच.ओ. कोतवाली और एस.एस.पी. भागलपुर को लिखित रूप से सूचित किया, लेकिन पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई।

5. आगे यह भी आरोप लगाया गया कि शिकायतकर्ता/ओ.पी. संख्या 2, याचिकाकर्ता की दुकान/भवन को हड़पने के उद्देश्य से 10.11.2008 को लगभग 11:00 बजे रात को राजेश मद्रासी, जावेद खान, महादेव साह और जगदीश यादव के साथ हथियारों से लैस होकर ओ.पी. नंबर 2 की दुकान में घुस गए। उनके साथ कई मजदूर भी थे, जिन्हें याचिकाकर्ता ने ओ.पी. नंबर 2 का सामान उसकी दुकान से बाहर फेंकने का आदेश दिया और उसके उक्त आदेश के अनुपालन में सह-अभियुक्त राजेश मद्रासी, जावेद खान, महादेव साह और जगदीश यादव ने सामान लूटना शुरू कर दिया और उसे एक ट्रैक्टर में लाद लिया। सामान में मुख्य रूप से पांच बोरा नारियल, एक पेट्रोमैक्स, एक कैश बॉक्स, एक दरवाजा और एक लोहे की ग्रिल आदि थी और कथित स्थान से निकलते समय शिकायतकर्ता/ओ.पी. नंबर 2 को धमकी दी कि उसके पास दुकान उसे बेचने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। आरोप का समापन करते हुए कहा गया कि लूटे गए सामान की कीमत कई लाख रुपये थी। यह भी आरोप लगाया गया कि घटना के दौरान अंततः उसकी दुकान को तोड़ दिया गया। शिकायतकर्ता/ओ.पी. सं. 2 ने उक्त घटना के संबंध में पुलिस को सूचित किया, लेकिन पुलिस प्रशासन द्वारा उन्हें कोई सहायता नहीं दी गई, जिसके अभाव में वर्तमान शिकायत मामला दिनांक 13.11.2008 को विद्वान मुख्य न्यायाधीश, भागलपुर के समक्ष दायर किया गया।

6. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि पक्षों के बीच विवाद सिविल प्रकृति का है और सिविल विवाद को निपटाने के लिए इसे आपराधिक रंग दिया गया।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह बताया गया कि इसी घटना के संबंध में ओ.पी. सं. 2 ने एक प्राथमिकी दर्ज की थी, जिसे कोतवाली पी.एस. याचिकाकर्ता एवं अन्य के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 341, 323, 427, 447, 385 एवं 34 के अंतर्गत किए गए अपराधों के लिए दिनांक 13.11.2008 को मामला संख्या 755/2008 दर्ज किया गया था, जिसमें जांच के पश्चात पुलिस ने दिनांक 31.12.2009 को आरोप पत्र संख्या 1139/2009 के माध्यम से अंतिम प्रपत्र/आरोप पत्र प्रस्तुत किया तथा इस याचिकाकर्ता को दोषमुक्त करते हुए मुकदमे का सामना करने के लिए नहीं भेजा, तथा जांच के दौरान विवाद को सिविल प्रकृति का पाया गया था।

8. यह बताया गया है कि उपरोक्त अंतिम प्रपत्र को विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, भागलपुर द्वारा भी स्वीकार किया गया था, लेकिन ओ.पी. संख्या 2 में न तो कोई विरोध याचिका दायर की गई और न ही विद्वान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी की अदालत के समक्ष याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई शिकायत व्यक्त की गई, और उसके बाद उसी घटना के लिए आरोप को बढ़ाते हुए वर्तमान आपराधिक शिकायत मामला 13.11.2008 को दर्ज किया गया, जिसमें घटना को डकैती का मामला बताया गया।

9. प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान शिकायत भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148 *और* 395 के तहत अपराध के लिए दायर की गई थी, जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 323, 379 *और* 34 के तहत अपराध के लिए संज्ञान लिया गया था। यह बताया गया है कि हालांकि, इस संबंध में शिकायत हलफनामे द्वारा समर्थित नहीं दिखती है, जो कि इस संबंध में **प्रियंका श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 6 एससीसी 287** के माध्यम से उपलब्ध स्थापित कानून के विपरीत है।

10. यह भी बताया गया है कि आरोपित संज्ञान आदेश एक तर्कपूर्ण और सकारण आदेश नहीं है और इसे बहुत ही यांत्रिक तरीके से पारित किया गया था।

11. उपरोक्त दलील के समर्थन में, दलील समाप्त करते समय, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने **गुलाम मुस्तफा बनाम कर्नाटक राज्य [2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 603]; प्रियंका श्रीवास्तव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2015) 6 एससीसी 287]; बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य [(2010 12 एससीसी 254]** और **नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2021) 19 एससीसी 401]** के माध्यम से उपलब्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय की कानूनी रिपोर्टों पर भरोसा किया।

12. इसके विपरीत, राज्य के लिए विद्वान ए.पी.पी. ने विपरीत पक्ष संख्या 2/शिकायतकर्ता के लिए उपस्थित विद्वान वकील की सहायता से, श्री अरविंद कुमार ने निरस्तीकरण याचिका का विरोध करते हुए प्रस्तुत किया कि विवादित भूमि ओ.पी. संख्या 2 द्वारा वर्ष 1999 में पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से खरीदी गई थी और इसलिए, प्रस्तुत किए गए अनुसार पक्षों के बीच कोई सिविल विवाद मौजूद नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यह घटना पक्षों के बीच हुई क्योंकि याचिकाकर्ता ओ.पी. संख्या 2 की दुकान/भवन को हड़पना चाहता था, जो उसके बाजार से सटा हुआ था ताकि इसे और विकसित किया जा सके।

13. यह बताया गया है कि कोतवाली पी.एस. केस संख्या 755/2008 में अंतिम प्रपत्र पुलिस कर्मियों की मिलीभगत से मामला दर्ज किया गया है, क्योंकि याचिकाकर्ता इलाके का एक प्रभावशाली व्यक्ति है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोप-पत्र प्रस्तुत करने का कारण, क्योंकि विवाद सिविल प्रकृति का था, कानून की नजर में पूरी तरह से गलत प्रतीत होता है, क्योंकि यह कानून की स्थापित स्थिति है कि

सिविल विवाद में आपराधिक कृत्य से इंकार नहीं किया जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता कभी भी अदालत के समक्ष पेश नहीं हुआ।

14. विपक्षी पक्षकार संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी बताया गया कि याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश के विरूद्ध दिनांक 04.04.2009 को इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 503/2019 प्रस्तुत किया, जो अभी भी इस न्यायालय के समक्ष लंबित है और इस प्रकार वर्तमान निरस्तीकरण याचिका पर दबाव डालकर याचिकाकर्ता न्यायालय के साथ धोखाधड़ी कर रहा है।

15. उपरोक्त प्रस्तुतीकरण को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह इंगित किया गया है कि वास्तव में ओ.पी. संख्या 2 अपने प्रति शपथपत्र के माध्यम से इस न्यायालय को गुमराह कर रहा है, क्योंकि उसे सीआर. रिवीजन संख्या 503/2019 की प्रगति के बारे में जानकारी नहीं है। इस संदर्भ में यह प्रस्तुत किया गया है कि यह सत्य है कि याचिकाकर्ता ने उक्त संज्ञान आदेश के विरुद्ध उक्त आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया था, लेकिन उसे इस न्यायालय द्वारा धारा 482 द.प्र.स. के तहत एक याचिका में परिवर्तित करने का निर्देश दिया गया था, जिसे इस न्यायालय के दिनांक 05.12.2024 के आदेश के अनुसार तदनुसार परिवर्तित कर दिया गया था और बाद में, रूपांतरण पर उक्त आपराधिक पुनरीक्षण का 23.01.2025 को निपटारा कर दिया गया था और, इस प्रकार, वर्तमान में केवल यह निरस्तीकरण याचिका ही बची हुई है, जो कि संज्ञान आदेश को चुनौती दे रही है।

16. मामले को बेहतर ढंग से समझने के लिए दिनांक 22.06.2009 के संज्ञान आदेश को पुनः प्रस्तुत करना समीचीन होगा, जो इस प्रकार है:

> "22.06.2009. शिकायतकर्ता उपस्थित है। एस.ए. पर उसकी जांच की गई है। शिकायतकर्ता की ओर से दो जांच गवाहों की जांच की गई है।

मैंने शिकायत याचिका और शिकायतकर्ता की एस.ए. तथा सभी जांच गवाहों के साक्ष्यों का अवलोकन किया है और शिकायतकर्ता द्वारा दायर किए गए कागजातों का अध्ययन किया है।

मामले के अभिलेखों के अवलोकन से मुझे पता चलता है कि शिकायत याचिका में नामित सभी आरोपियों के खिलाफ मुकदमे का सामना करने के लिए धारा 323/379/34 आईपीसी के तहत प्रथम दृष्टया मामला बनता है। शिकायतकर्ताओं को निर्देश दिया गया है कि वे तय तिथि को या उससे पहले समन दाखिल करें। कार्यालय क्लर्क को निर्देश दिया गया है कि समन दाखिल करने पर आरोपी व्यक्तियों को समन जारी किया जाए। आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति के लिए 24.07.2009 की तिथि तय की जाए। (धारा 323/379/34 आईपीसी के तहत प्रथम दृष्टया मामला बनता है) – 22.06.09

आदेशित
न्यायिक मजिस्ट्रेट,
प्रथम श्रेणी
भागलपुर"

17. यह स्पष्ट है कि दिनांक 10.11.2008 की घटना के लिए, आरंभ में एक एफ.आई.आर., कोतवाली पी.एस. कांड संख्या 755/2008 दिनांक 13.11.2008 को आई.पी.सी. की धारा 341, 323, 427, 447, 385 एवं 34 के अंतर्गत अपराध के लिए दर्ज की गई थी तथा तत्पश्चात यह शिकायत मामला भी दर्ज किया गया जिसमें घटना को डकैती बताया गया। आरोप का मूल भूमि विवाद के इर्द-गिर्द घूमता हुआ प्रतीत होता है। एफ.आई.आर. संख्या 755/2008 में पुलिस ने आरोप-पत्र समर्पित किया, जिसे विद्वान सी.जे.एम., भागलपुर द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया है। दिनांक 13.11.2008 की शिकायत भी ओ.पी. संख्या 2 के हलफनामे द्वारा समर्थित नहीं प्रतीत होती है, जो **प्रियंका श्रीवास्तव के मामले** (सुप्रा) के माध्यम से उपलब्ध स्थापित कानूनी स्थिति के विपरीत प्रतीत होती है।

18. गुलाम मुस्तफा के मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के **पैरा 32 से 34** और **प्रियंका श्रीवास्तव के मामले** (सुप्रा) के **पैरा 30** को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा, जो इस प्रकार है:

32. कमल शिवाजी पोकरनेकर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2019) 14 एससीसी 350 में भी कानूनी स्थिति पर विचार किया गया था। महेंद्र के सी बनाम कर्नाटक राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1021 में, इस न्यायालय ने कहा:

"23. ... उच्च न्यायालय को द.प्र.स. की धारा 482 के तहत दूसरे प्रतिवादी-आरोपी के खिलाफ दर्ज एफआईआर को रद्द करने के लिए निम्नलिखित दो परीक्षणों को लागू करना चाहिए था: i) क्या शिकायत में लगाए गए आरोप, प्रथम दृष्टया अपराध का गठन करते हैं; और ii) क्या आरोप इतने असंभव हैं कि एक विवेकशील व्यक्ति इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा निष्कर्ष यह है कि शिकायत के साथ आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है।"

33. हम अर्नब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2021) 2 एससीसी 427 के बारे में भी समान रूप से सचेत हैं, जहाँ पैराग्राफ 68 में कहा गया था कि "... स्पेक्ट्रम का दूसरा छोर भी उतना ही महत्वपूर्ण है: प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए उच्च न्यायालय में निहित शक्ति की धारा 482 द्वारा मान्यता स्वतंत्रता की रक्षा के लिए एक मूल्यवान सुरक्षा उपाय है।" हम इस टिप्पणी से सहमत हैं। **नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 315** में कानून का विस्तृत विवरण भी आने वाला है, जिसे हमने तत्काल निर्णय देते समय ध्यान में रखा है।

34. जहां तक एससी/एसटी अधिनियम से जुड़े मामलों में हस्तक्षेप का सवाल है, हम केवल यह बता सकते हैं कि इस न्यायालय की 3 न्यायाधीशों की पीठ ने रामावतार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 966 में माना है कि केवल यह तथ्य कि अपराध एक 'विशेष क़ानून' के अंतर्गत आता है, इस न्यायालय या उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 142 या संहिता की धारा 482 के तहत अपनी संबंधित शक्तियों का प्रयोग करने से नहीं रोकेगा, नीचे दिए गए शब्दों में:

"15. आमतौर पर, एससी/एसटी अधिनियम जैसे विशेष क़ानूनों से उत्पन्न होने वाले अपराधों से निपटते समय, न्यायालय अपने दृष्टिकोण में अत्यंत सतर्क रहेगा। एससी/एसटी अधिनियम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के खिलाफ अपमान, अपमान और उत्पीड़न के कृत्यों को रोकने के लिए विशेष रूप से अधिनियमित किया

गया है। एससी/एसटी अधिनियम भी अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के खिलाफ अपमान, अपमान और उत्पीड़न के कृत्यों को रोकने के लिए अधिनियमित किया गया है। यह निराशाजनक वास्तविकता है कि अनेक उपाय करने के बावजूद अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियाँ उच्च जातियों के हाथों विभिन्न अत्याचारों का शिकार हो रही हैं। न्यायालयों को इस तथ्य के प्रति सचेत रहना होगा कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 15, 17 और 21 में उल्लिखित संवैधानिक सुरक्षा उपायों को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है, जिसका दोहरा उद्देश्य इन कमजोर समुदायों के सदस्यों की सुरक्षा करना और जाति आधारित अत्याचारों के पीड़ितों को राहत और पुनर्वास प्रदान करना है।

16. दूसरी ओर, जहाँ न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि विचाराधीन अपराध, यद्यपि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के अंतर्गत आता है, मुख्य रूप से सिविल या निजी है, जहाँ कथित अपराध पीड़ित की जाति के कारण नहीं किया गया है, या जहाँ कानूनी कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा, न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। इसी तरह, जब समझौता/समझौते के आधार पर निरस्तीकरण के लिए प्रार्थना पर विचार किया जाता है, यदि न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्निहित उद्देश्य का उल्लंघन नहीं होगा या उसे कम नहीं किया जाएगा, भले ही संबंधित अपराध के लिए कोई सजा न हो, तो केवल यह तथ्य कि अपराध किसी 'विशेष क़ानून' के अंतर्गत आता है, इस न्यायालय या उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 142 या द.प्र.स. की धारा 482 के तहत अपनी-अपनी शक्तियों का प्रयोग करने से नहीं रोकेगा।

(जोर दिया गया)"

<u>प्रियंका श्रीवास्तव का मामला</u>

"30. हमारी राय में, इस देश में एक ऐसा चरण आ गया है जहाँ धारा 156(3) द.प्र.स. के आवेदनों को आवेदक द्वारा विधिवत शपथ पत्र द्वारा समर्थित किया जाना चाहिए जो मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र का आह्वान करना चाहता है। इसके अलावा, एक उचित मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट को सत्य की पुष्टि करने की सलाह दी जाएगी और आरोपों की सत्यता को भी सत्यापित कर सकते हैं। यह हलफनामा आवेदक को अधिक जिम्मेदार बना सकता है। हम ऐसा कहने के लिए बाध्य हैं क्योंकि इस

तरह के आवेदन नियमित तरीके से बिना किसी जिम्मेदारी के केवल कुछ व्यक्तियों को परेशान करने के लिए दायर किए जा रहे हैं। इसके अलावा, यह तब और अधिक परेशान करने वाला और भयावह हो जाता है जब कोई ऐसे लोगों को पकड़ने की कोशिश करता है जो किसी वैधानिक प्रावधान के तहत आदेश पारित कर रहे हैं जिसे उक्त अधिनियम के ढांचे के तहत या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती दी जा सकती है। लेकिन किसी आपराधिक अदालत में अनुचित लाभ उठाने के लिए ऐसा नहीं किया जा सकता है जैसे कि कोई व्यक्ति वह अपना हिसाब चुकता करने के लिए दृढ़ संकल्पित है।"

19. बाबूभाई के मामले (सुप्रा) के माध्यम से उपलब्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के **पैरा 15 से 21** को पुनः प्रस्तुत करना भी समीचीन होगा, जो इस प्रकार है:

"**15.** न्यायालय ने आगे निम्न टिप्पणी की: (टी.टी. एंटनी मामला [(2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048], एससीसी पृष्ठ 200, पैरा 27)

"27. संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के तहत नागरिकों के मौलिक अधिकारों और संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस की व्यापक शक्ति के बीच एक न्यायसंगत संतुलन न्यायालय द्वारा बनाया जाना चाहिए। इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि धारा 173 द.प्र.स. की उपधारा (8) पुलिस को आगे की जांच करने, आगे के साक्ष्य (मौखिक और दस्तावेजी दोनों) प्राप्त करने और मजिस्ट्रेट को आगे की रिपोर्ट या रिपोर्ट भेजने का अधिकार देती है। ... हालाँकि, जाँच की व्यापक शक्ति किसी नागरिक को हर बार एक ही घटना के संबंध में पुलिस द्वारा नई जाँच के अधीन करने की अनुमति नहीं देती है, जिससे एक या अधिक संज्ञेय अपराध उत्पन्न होते हैं, चाहे धारा 173(2) द.प्र.स. के तहत अंतिम रिपोर्ट दाखिल करने से पहले या बाद में लगातार एफआईआर दर्ज करने के परिणामस्वरूप। यह स्पष्ट रूप से धारा 154 और 156 द.प्र.स. के दायरे से बाहर होगा, बल्कि किसी दिए गए मामले में जाँच की वैधानिक शक्ति के दुरुपयोग का मामला होगा। हमारे विचार में, दूसरी या लगातार एफआईआर के आधार पर ताजा *जांच* का मामला, जो *काउंटर केस* नहीं है, उसी या उससे जुड़े संज्ञेय अपराध के संबंध में दर्ज किया गया है, जो कथित तौर पर उसी लेनदेन के दौरान किया गया है और जिसके संबंध में पहली एफआईआर के अनुसार या तो जांच चल रही है या धारा 173

(2) के तहत अंतिम रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को भेज दी गई है, धारा 482 द.प्र.स. या संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त मामला हो सकता है।

(जोर दिया गया)

16. *उपकार सिंह बनाम वेद प्रकाश [(2004) 13 एससीसी 292: 2005 एससीसी (क्रि) 211]* में, इस न्यायालय ने *टी.टी. एंटनी* [(2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048] के निर्णय पर विचार किया और स्पष्ट किया कि उक्त मामले में निर्णय प्रतिदावे की प्रकृति में शिकायत के पंजीकरण को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं करता है। इस न्यायालय द्वारा उक्त मामले में जो निर्धारित किया गया था वह यह है कि उसी शिकायतकर्ता द्वारा उसी अभियुक्त के विरुद्ध कोई भी आगे की शिकायत, मामला दर्ज होने के बाद, द.प्र.स. के तहत निषिद्ध है क्योंकि इस संबंध में जांच पहले ही शुरू हो चुकी होगी और उसी अभियुक्त के विरुद्ध शिकायत मूल शिकायत में उल्लिखित तथ्यों में सुधार के बराबर होगी, इसलिए धारा 162 के तहत निषिद्ध होगी। द.प्र.स.। हालांकि, यह नियम पहली शिकायत में आरोपी द्वारा या उसकी ओर से उक्त घटना के एक अलग संस्करण का आरोप लगाने वाले प्रतिवाद पर लागू नहीं होगा। इस प्रकार, यदि एक ही घटना के संबंध में प्रतिद्वंद्वी संस्करण हैं, तो जांच एजेंसी दो अलग-अलग एफआईआर पर एक ही कार्रवाई करेगी और दोनों के तहत एक ही जांच एजेंसी द्वारा जांच की जा सकती है और इस प्रकार, *घटनाओं के अलग-अलग संस्करण वाले एक ही घटना के संबंध में प्रतिवाद से संबंधित एफआईआर दर्ज करना अनुमेय है।*

17. *रमेशचंद्र नंदलाल पारीख बनाम गुजरात राज्य* [(2006) 1 एससीसी 732: (2006) 1 एससीसी (क्रि) 481] में इस न्यायालय ने *टी.टी. एंटनी* [(2001) 6 एससीसी 181: 2001 एससीसी (क्रि) 1048] सहित पहले के फैसले पर पुनर्विचार किया और माना कि यदि एफआईआर एक ही संज्ञेय अपराध या एक या अधिक संज्ञेय अपराधों को जन्म देने वाली एक ही घटना के संबंध में नहीं हैं और न ही उन पर उसी लेनदेन या उसी घटना के दौरान किए जाने का आरोप है जैसा कि पहली एफआईआर में आरोपित किया गया है, तो दूसरी एफआईआर स्वीकार करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

18. *निर्मल सिंह कहलों बनाम पंजाब राज्य* [(2009) 1 एससीसी 441: (2009) 1 एससीसी (सीआरआइ) 523] में इस न्यायालय ने एक ऐसे मामले पर विचार किया, जिसमें व्यक्तियों द्वारा किए गए अपराधों के

संबंध में 14-6-2002 को पहले ही एक एफआईआर दर्ज की जा चुकी थी। इसके बाद, मामले को केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) को सौंप दिया गया, जिसने जांच के दौरान भारी मात्रा में सामग्री एकत्र की और बड़ी संख्या में व्यक्तियों के बयान भी दर्ज किए और सीबीआई इस निष्कर्ष पर पहुंची कि पंचायत सचिवों की चयन प्रक्रिया में घोटाला हुआ था। दूसरी एफआईआर सीबीआई ने दर्ज की थी। साक्ष्यों की सराहना करने के बाद यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सीबीआई द्वारा जांच किया गया मामला एक बड़ी साजिश से जुड़ा था। इसलिए, यह जांच बहुत व्यापक दायरे में की गई है और माना गया है कि दूसरी एफआईआर अनुमेय है और इसकी जांच की जानी चाहिए।

19. न्यायालय ने निम्न प्रकार से माना: (*निर्मल सिंह कहलों* मामला [(2009) 1 एससीसी 441: (2009) 1 एससीसी (क्रि) 523], एससीसी पृष्ठ 466-67, पैरा 67)

"67. *हमारी राय में दूसरी एफआईआर न केवल इसलिए मान्य होगी क्योंकि इसमें अलग-अलग संस्करण थे, बल्कि तब भी जब तथ्यात्मक आधार पर नई खोज की गई हो।* पुलिस अधिकारियों द्वारा बाद के चरण में खोज की जा सकती है। एक बड़ी साजिश के बारे में खोज किसी अन्य कार्यवाही में भी सामने आ सकती है, उदाहरण के लिए, इस प्रकृति के मामले में। यदि पुलिस अधिकारियों ने निष्पक्ष जांच नहीं की और मामले के साजिश पहलू को अपनी जांच के दायरे से बाहर रखा, तो हमारी राय में, जब भी यह सामने आए, तो राज्य और/या उच्च न्यायालय के लिए यह खुला था कि वह उस अपराध के संबंध में जांच का निर्देश दे जो उस *अपराध से अलग और अलग है जिसके लिए पहले से ही एफआईआर दर्ज की गई थी।*"

20. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, इस विषय पर कानून यह प्रभाव डालता है कि धारा 154 द.प्र.स. के तहत एक एफआईआर एक बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी द्वारा दर्ज की गई संज्ञेय अपराध की पहली सूचना है। यह आपराधिक कानून की मशीनरी को गति प्रदान करता है। और जांच की शुरुआत को चिह्नित करता है जो धारा 169 या 170 द.प्र.स. के तहत एक राय के गठन के साथ समाप्त होता है, जैसा भी मामला हो, और धारा 173 द.प्र.स. के तहत एक पुलिस रिपोर्ट को अग्रेषित करना। इस प्रकार, यह बहुत संभव है कि एक या एक से अधिक संज्ञेय अपराधों से जुड़ी एक ही घटना के संबंध में पुलिस स्टेशन के प्रभारी पुलिस अधिकारी को एक से अधिक

जानकारी दी जाए। ऐसे मामले में, उसे डायरी में प्रत्येक जानकारी दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्यों की जांच शुरू होने के बाद मौखिक या लिखित रूप से दी गई अन्य सभी जानकारी धारा 162 द.प्र.स. के अंतर्गत आने वाले कथन होंगे।

21. ऐसे मामले में अदालत को दोनों एफआईआर को जन्म देने वाले तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करनी होगी और यह पता लगाने के लिए समानता का परीक्षण लागू करना होगा कि क्या दोनों एफआईआर एक ही घटना के संबंध में एक ही घटना से संबंधित हैं या उन घटनाओं के संबंध में हैं जो एक ही लेनदेन के दो या अधिक हिस्से हैं। यदि उत्तर सकारात्मक है, तो दूसरी एफआईआर रद्द करने योग्य है। हालाँकि, यदि विपरीत साबित होता है, जहाँ दूसरी एफआईआर में संस्करण अलग है और वे दो अलग-अलग घटनाओं/अपराधों के संबंध में हैं, तो दूसरी एफआईआर अनुमेय है। यदि एक ही घटना के संबंध में पहली एफआईआर में आरोपी अलग बयान या प्रतिवाद लेकर आता है, तो दोनों एफआईआर पर जांच की जानी चाहिए।

20. अंत में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पैरा 10.3 को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा, जो **नीहारिका के मामले** (सुप्रा) के माध्यम से उपलब्ध है, जो इस प्रकार है:

10.3. फिर **भजन लाल [हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 अनुपूरक (1) एससीसी 335: 1992 एससीसी (क्रि) 426]** में इस न्यायालय का प्रसिद्ध निर्णय आता है। उक्त निर्णय में, इस न्यायालय ने धारा 482 द.प्र.स. और/या भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एफआईआर को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय की शक्तियों के दायरे पर विस्तार से विचार किया और कई न्यायिक मिसालों का हवाला दिया और माना कि उच्च न्यायालय को आरोपों के गुण और दोष की जांच शुरू नहीं करनी चाहिए और जांच एजेंसी को अपना कार्य पूरा करने की अनुमति दिए बिना कार्यवाही को रद्द नहीं करना चाहिए। साथ ही, इस न्यायालय ने निम्नलिखित मामलों की पहचान की है जिनमें एफआईआर/शिकायत को रद्द किया जा सकता है:

*"**102.** (1)* जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते हैं या आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और एफआईआर के साथ दी गई अन्य सामग्री, यदि कोई हो, किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती है, तो पुलिस अधिकारियों द्वारा संहिता की धारा 156(1) के तहत जांच को उचित ठहराया जा सकता है, सिवाय इसके कि संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत जांच की जाए।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उनके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं बनाते हैं, बल्कि केवल एक अपराध बनाते हैं। असंज्ञेय अपराध के मामले में, पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना कोई जांच नहीं की जा सकती, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के अंतर्गत परिकल्पित है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम के किसी भी प्रावधान (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) में कार्यवाही शुरू करने और उसे जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना हो और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण तरीके से अभियुक्त पर बदला लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से शुरू की गई हो।"

21. अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि शिकायतकर्ता ने स्वयं, जांच के दौरान न्यायालय के प्रश्न पर, यह कहा है कि याचिकाकर्ता ने उसकी भूमि पर अतिक्रमण किया है, लेकिन उसने सिविल मुकदमा दायर नहीं किया है। शिकायतकर्ता द्वारा एस.ए. पर बताए गए कथित घटना के तथ्य अन्य जांच गवाहों द्वारा प्रथम दृष्टया चोरी के रूप में समर्थित नहीं प्रतीत होते हैं। हमले के बिंदु पर भी विपरीत कथन है, क्योंकि शिकायतकर्ता ने स्वयं कहा है कि याचिकाकर्ता के आदेश पर अन्य लोगों द्वारा

हमला किया गया था, जबकि अन्य जांच गवाहों ने कहा है कि इस याचिकाकर्ता ने शिकायतकर्ता पर हमला किया था, जिसे शिकायतकर्ता ने शपथ पर अपना बयान देते समय *प्रथम दृष्टया* नकार दिया था। अभिलेख के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि विवाद प्रथम दृष्टया भूमि विवाद मुख्य रूप से सीमा के कारण किए गए सीमांकन से संबंधित प्रतीत होता है, जिसे इस याचिकाकर्ता द्वारा ध्वस्त किया गया था। शिकायत याचिका हलफनामे द्वारा भी समर्थित नहीं प्रतीत होती है।

22. भूमि विवाद के कारण पूर्व से दुश्मनी होने के तथ्यों की पृष्ठभूमि में, परोक्ष और गुप्त उद्देश्य से इंकार नहीं किया जा सकता। अतः, शिकायत वाद संख्या 2065(सी) 2008 के संबंध में विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी - प्रथम श्रेणी, भागलपुर द्वारा दिनांक 22.06.2009 को पारित याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपित आदेश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों से मार्गदर्शक कानूनी टिप्पणी लेते हुए निरस्त/अपास्त किया जाता है।

23. तदनुसार, यह आवेदन स्वीकार किया जाता है।

24. इस निर्णय की एक प्रति विद्वान ट्रायल कोर्ट को तत्काल भेजी जाए।

(चंद्र शेखर झा, न्यायमूर्त्ति)

राजीव/-

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।